मनुष्य बनो

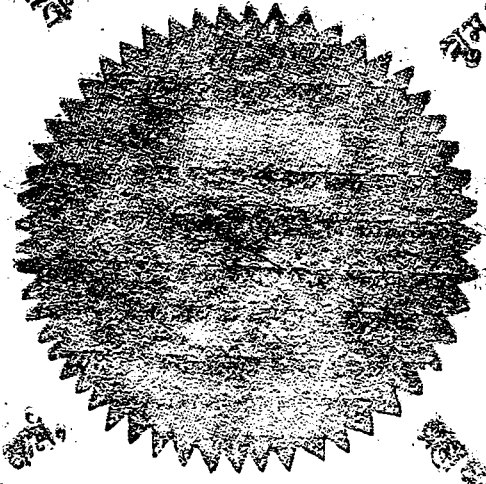

शरण आदि, शुभ संकल्प,

क्षमा,   प्रेम,

निष्काम कर्म, कर्तव्य पालन,

[दय]ाल फकीरचन्द जी महारा[ज]

मानवता मन्दिर होशियारपुर (पंजा[ब])

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टि-कोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचा- सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है। मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और सा- रण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्था- दिया जायगा।

४—किसी धर्म, पंथ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जाँय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ साफ अक्ष- लिखना चाहिये। उत्तर के लिये जवाबी कार्ड आना चाहिये वी० पी० वी० से पत्रिका नहीं भेजी जायगी। इसका वार्षिक मूल्य १०—०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुंचे तो पहले अपने यहां डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर मिले व अगला अंक निकलने से एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेज- के नाम से भेजने चाहिये। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ सा- लिखना चाहिये। और पते की तबदीली भी।

प्रकाशक

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

❋ मनुष्य बनो ❋

वर्ष ३३	फाल्गुन संवत २०४० वि०	अङ्क ६

शब्द

नाम रस पीले मेरे भाई ॥टेक॥

ध्रुव प्रहलाद नाम रस माते, माती मीरा बाई ।
शिव सनकादिक नाम दिवाने, गनिका सदन कसाई ॥ नाम०
ब्रह्मा नाम जपे निस वासर, शिव रहे तारी लाई ।
विष्णु गनेश नाम आधारा, शेष सहस मुख गाई ॥ ,,
नानक जपे नाम गुरु निस दिन, सन्त कबीर बताई ।
शबरी भीलनी नाम के पुन से, राम से नेह लगाई ॥ ,,
तुलसी जपे प्रभु नाम निरन्तर, जपत सदा लौ लाई ।
सूरदास नाम के वल से, हिये की आंख खलाई ॥ ,,
नाम बिना जीवन है विरथा, बहु पाछे पछताई ।
गुरु कीं कृपा मिला शुभ अवसर, नाम रतन धन पाई ॥ ,,
गुरु की सेवा साध संगत, दिन दिन बढ़े सबाई ।
राधास्वामी नाम गुरु से मिलिया, परगट तोहि जताई ॥ ,,

प्रकृति के कुछ प्रसिद्ध नियम

परिवर्तनशील स्थिति

(लेखक परम संत दयाल जी महाराज)

यदि प्रकृति के क्रिया कलाप को ध्यान करके देखा जाये तो ज्ञात होता है कि प्रकृति के प्रत्येक कार्य में प्रत्येक समय परिवर्तन हो रहा है। समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता और कोई वस्तु अमर नहीं। प्रकृति के सभी नियम अटल हैं। आकाश के सभी ग्रह-तारागण आदि, हमारे अपने शरीर और मन इन्हीं नियमों के अनुसार प्रत्येक समय बदलते रहते हैं। यह भली प्रकार समझ लेना चाहिये कि परिवर्तन हमारी इन्द्रियों को उसी समय अनुभव होता है जब वह स्थूल रूप धारण करके हमारे सामने आता है। वास्तव में परिवर्तन प्रत्येक समय सूक्ष्म रूप से हो रहा है। परिवर्तन के इस नियय से निम्नलिखित सिद्धान्त निकालना सम्भव है:—

(क) आपको अपने आस पास के वातावरण और परिस्थितियों में होने वाले परिवर्तन के लिये प्रत्येक समय सावधान रहना चाहिये। यदि हम इस परिवर्तन को अपने अनुकूल बनाना चाहते हैं तो हमें अपने मन और बुद्धि को इतना ग्रहणशील बनाना होगा कि वे भविष्य में अपने सामने आने वाले सूक्ष्म परिवर्तनों को ग्रहण कर सकें।

(ख) यदि हम सुखी और सन्तुष्ट जीवन व्यतीत करना चाहते हैं तो यह अति आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति एक यथार्थ लक्ष्य पर चले, समाज में नियमानुसार रहे और देश एक प्रेरणा तथा उत्साहजनक आदर्श का पालन करे। परिवर्तन के इस अथाह सागर में यह सब हमें स्थिर रखने की शक्ति दे सकते हैं।

(२) द्वन्द

इस प्रत्यक्ष जगत (आँखों से दीखने वाले) में कोई भी वस्तु पूर्ण नहीं है। यह जगत द्वन्दमय है। अच्छाई और बुराई प्रत्येक स्थान पर मिश्रित है और किसी भी वस्तु का पूर्ण रूप से अच्छा या बुरा होना असम्भव है। प्रकृति के इस नियम से यह निष्कर्ष निकलता है कि:—

(क) हमें यह कभी भी नहीं सोचना चाहिये कि हमने किसी भी वस्तु में पूर्णता प्राप्त करली है। इसके बजाय हमें अपने काम को पूर्णता की ओर ले जाने का पुरुषार्थ करते रहना चाहिये।

(ख) हमें मर्यादा के भीतर रह कर क्षमा और दूसरों की भावनाओं का आदर करना चाहिये।

(ग) प्रत्येक क्रिया की एक प्रतिक्रिया होती है (To every action there is an equal and opposite reaction) और यह किसी के लिये भी सम्भव नहीं कि वह कोई कर्म करे परन्तु उसके परिणाम से बच जाये। क्योंकि जगत में अच्छाई और बुराई प्रत्येक कर्म में मिश्रित है इसलिये जीवन में उतार चढ़ाव अवश्य होते हैं। इन्हें स्वाभाविक रूप से ही ग्रहण करना चाहिये और हमें जीवन के प्रति हर्षयुक्त तथा आशावादी दृष्टिकोण बनाए रखना चाहिये।

(३) बाह्य जगत

समस्त बाह्य-जगत उदासीन (Neutral) है क्योंकि इस जगत की कोई भी वस्तु स्वयं ही सुख और दुःख देने की शक्ति नहीं रखती। सुख और दुःख प्रत्येक व्यक्ति के अनुभव की बात है, जिन के लिये वह स्वयं उत्तरदायी है। सुख और दुःख की भावनायें प्रत्येक मनुष्य के अपने मन के भीतर उत्पन्न होती हैं

और बाहर नहीं। एक ही वस्तु, एक ही समय में, अनेक व्यक्तियों के मन में पृथक- पृथक, भावनायें उत्पन्न करने की शक्ति रखती है। इस क्रम में अब यह कहा जा सकता है कि हमारा मन ही हमारे सब कर्मों के लिये उत्तरदायी है। इस लिये यदि हम शुद्ध-पवित्र और सुखी जीवन व्यतीत करना चाहते है तो हमें अपने मन को सदैव एक ऐसे साँचे में रखना होगा जिस में उसका सन्तुलन और निरोध होता रहे।

(४) मानव का मन

मानव के व्यवहार को समझने के लिये मानव मन की क्रिया का ज्ञान होना आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि उसका एक मन है किन्तु मन आज तक किसी ने देखा नहीं। मन कोई स्थूल वस्तु नहीं है। यह केवल हमारे विचार या संकल्पों का प्रवाह है। इसकी तुलना एक नदी से की जा सकती है जिसके दो किनारों के भीतर जल बहता है। निरन्तर अभ्यास करने से मन के विचारों के प्रवाह को रोका जा सकता है। जब हम इस स्थिति में पहुँच जाते हैं तो देखते हैं कि मन लीन हो जाता है। साधारणतया मन जागृत अवस्था में और स्वप्न अवस्था में क्रियाशील रहता है।

अगला प्रश्न यह है कि विचारों का प्रवाह क्या है, और विचारों को कौन सी वस्तु उत्पन्न करती है? जब कोई इच्छा उत्पन्न होती है तो उसको पूरा करने के लिये विचार उभरते हैं फिर विचार बुद्धि की आज्ञानुसार काम करते हैं। यदि बुद्धि अच्छी प्रकार विकसित है तो फिर या तो वह विचारों का निरोध करती है या फिर उनको कर्म इन्द्रियों की सहायता से कर्म करने की प्रेरणा देती है। परन्तु यदि बुद्धि विकसित न हो और मन को काबू में न रख सके तो फिर भले और बुरे की

पहचान नहीं हो सकती और विचार फिर अपने आप कर्मेन्द्रियों से क्रिया करवाते हैं। इस से यह सिद्ध होता है कि विचार अथवा संकल्प ही वह शक्ति है जिस से सभी काम होते हैं। मानव का समस्त व्यवहार उसके मन पर निर्भर है। बाह्य जगत में काम करने के लिये स्थूल शरीर मानवीय मन का केवल एक यन्त्र मात्र है।

जब पशुओं की बुनियादी जरूरतें पूरी हो जाती हैं तो उनके मन सन्तुष्ट हो जाते हैं, पर यह बात मानवीय मन पर लागू नहीं हो सकती। मनुष्य की जब मूल आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है तब उसे दूसरी वस्तुओं के प्रति अवश्य जिज्ञासा होती है। इस से सिद्ध होता है कि भौतिक पदार्थों की बुनियादी आवश्यकतायें पूरी हो जाने के बाद भी मनुष्य पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं हो सकता। सभी जानते हैं कि मानव के मन में उठने वाली प्रत्येक इच्छा को पूर्ण करने की आज्ञा हो तो सारी सामाजिक दशा बिगड़ जायेगी।

मानवीय मन को अधिकार में रखने के लिये ऋषि-मुनियों ने नियम बनायें हैं जिनको हमें अपनाना चाहिए और जिन्हें माता पिता को अपनी सन्तान को तथा आचार्यों को अपने विद्यार्थियों को बचपन से ही सिखाना चाहिये।

—:०:—

'आध्यात्मिक अनुशासन'

(५) ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य का यह मतलब नहीं कि सभी लोग 'मैथुन व्यवहार' (sexual activity) का पूर्ण रूप से त्याग कर दें। आयु, पेशा और अवस्था के अनुसार सभी कर्मों और क्रियाओं में मर्यादा

का उलंघन न करते हुए जीवन व्यतीत करना ही ब्रह्मचर्य है।

(६) सत्य

सच्चाई को अपनाने के लिए सारे जीवन में हर तरह से कोशिश करनी चाहिए। इसके साथ यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि इस संसारिक जीवन में ऐसी अवस्था भी आ सकती है जबकि जान बूझकर झूठ बोलना ही सत्य को अपनाना हो जाता है। जैसे कि बच्चों के साथ वार्तालाप, उन लोगों से वार्तालाप जो सदैव बुराई करने पर तुले हुए हों इत्यादि। ऐसे अवसरों पर सच और झूठ का निर्णय आपके असली उद्देश्य पर निर्भर है।

(७) अहिंसा

अहिंसा का सही मतलब है कि मन, वचन और कर्म से किसी जड़ या चेतन वस्तु को जरूरत से ज्यादा कष्ट न दिया जाये। एक जीवित प्राणी के लिए बिलकुल अहिंसक बन जाना सम्भव नहीं। प्रत्येक गृहस्थी का यह एक पवित्र कर्त्तव्य है कि वह अपने लिये परिवार के लिये और अपने आश्रितों के लिये अपने सारे काम पूरी तरह निबाहे, चाहे उनके लिये उसे यथा-योग्य शारीरिक ताकत का भी उपयोग क्यों न करना पड़े। कायरता दिखाना एक बड़ा भारी पाप है। इस संसारिक जीवन में अहिंसा का प्रयोग परिस्थिति और अवस्था के अनुसार बदलता रहता है। ब्रह्मचर्य, सत्य और अहिंसा को परिस्थति के अनुसार ठीक समझना और प्रयोग करना कोई साधारण बात नहीं है।

(८) भोजन

(क) अपने भोजन में से हर किस्म की नशीली, चीजें, माँस, मछली और अण्डे वगैरह निकाल देने चाहियें, जब तक किसी डाक्टर ने सेहत के कारण इनके प्रयोग की आज्ञा न

दी हो।

(ख) लहसुन, प्याज, राई, मिर्च, खट्टे अचार तथा इस तरह की दूसरी तीखी अथवा कड़वी चीजों का प्रयोग केवल थोड़ी सी मात्रा में करना ठीक रहता है।

(ग) अनाज, सब्जियाँ, फल, दूध तथा दूध से बनी हुई वस्तुओं का ही भोजन में उपयोग होना चाहिये।

(९) गुरू

गुरु का सही अर्थ है—सच्चा ज्ञान। अगर आपको किसी योग्य व्यक्ति से मार्ग दर्शन प्राप्त न हो सके तो आप अकारण ही चिन्ता में न पड़े। आप आध्यात्मिक मार्ग पर एक दम चलना शुरु कर सकते हैं। और फिलहाल अपने गुरु आप बन सकते हैं। अगर आप ठीक तरह से नियमानुसार अभ्यास करेंगे तब आप जरूर उन्नति करेंगे। उचित अवसर पर गुरु स्वयं आपके जीवन में आ जायेगा। ऐसा होना एक अटल नियम है। किन्तु झूठे और पाखण्डी गुरुओं से सावधान रहें।

(१०) मोक्ष

फिलहाल मोक्ष के बारे में कोई चिन्ता न करें। समय आने पर आपको मोक्ष प्राप्ति के लिए सब सुविधाए मिल जायेंगी।

(११) सत्संग

उन सन्तों, महात्माओं, रिषियों मुनियों तथा महापुरुषों का ही सत्संग करें तथा उनकी संगति में ही नियमानुसार बैठें जिन को समाज के बुद्धिमान पुरुषों ने अपनाया है। केवल अच्छा साहित्य पढ़ें। जो कुछ भी आपने सुना और पढ़ा हो उसका गहराई से मनन कीजिए और उसके अनुसार अपनी अवस्था को देखते हुए अपना संसारिक जीवन व्यतीत करने की हर तरह से कोशिश करें।

(१२) संगत

केवल अच्छे ही ही लोगों को संगति करें। अपने माता पिता अध्यापकों और बुजर्गों के प्रति सदा ही बहुत सम्मान दर्शायें चाहे जीवन में आपका उन से कितना ही मतभेद क्यों नहो सहनशील बनें। प्रति दिन कुछ निष्काम सेवा करें। जब कभी आपसे हो सके आप "अधिकारी" लोगों को भी सेवा करें। लेकिन अपने आश्रितों का हक छीन कर यह काम कभी न कर

(१३) आसन

एकान्त में आरामदायक आसन में शरीर को इस प्रकार ढीला छोड़ दें ताकि पीठ गर्दन और सिर एक सीधी रेखा में आ जावें और शरीर इस अवस्था में कुछ समय के लिए पूरी तरह बेहरकत रह सके। नवसाधकों को पालती मारकर जमीन पर इस प्रकार बैठना चाहिए कि मूलाधार और जाँघें अधिक मजबूती के साथ जमीन से लग जायें और पीठ गर्दन तथा सिर एक सीधी रेखा में जमीन पर लम्ब अवस्था में आ जावें। एक सख्त धरातल इस काम के लिए सहायक नहीं होता बल्कि एक पतला नर्म तथा चौड़ा गद्दा अधिक अच्छा रहता है। ऐसा स्थान होना उचित है जो कि :—

(क) साफ।
(ख) शान्त।
(ग) रमणीक।
(घ) तथा हर किस्म के विघ्नों से रहित हो जिस में पशु, पक्षी, कीडे, मकौड़े आदि भी शामिल हैं।

अगर सम्भव हो सके ता एक स्थान इसी काम के लिए नियत कर देना चाहिए। धूप, अगरबत्ती जलाना और विधि पूर्वक कर्मकाण्ड आदि करना शुरू शुरू में हो किसी हद तक लाभदायक होता है।

(१४) श्वास

हमारे सांस लेने तथा मानसिक अवस्था में एक घनिष्ट सम्बन्ध है। साधारणतया कुछ मिनटो के लिए लम्बे और धीरे धीरे सांस लेने और फिर धीरे धीरे छोड़ने का अभ्यास करते रहना चाहिए। इस से मन को काबू करने में सहायता मिलती है। इसका अभ्यास लाभदायक हो सकता है। करके देखें।

(१५) इष्ट

साधारणतया नवसाधकों के लिए कोई न कोई इष्ट जरूरी होता है। यह इष्ट कोई मूर्ति भी हो सकती है अथवा आप के आदर्श का रूप भी हो सकता है।

जैसे :—राम, कृष्ण, ओ३म्, गुरु, देवी आदि।

(१६) जप

वह अच्छा शब्द, जिस का कोई अध्यात्मिक आधार हो उसके बार बार उच्चारण करने की क्रिया को जप कहते हैं। जैसे:—

अल्लाह–अल्लाह

राम-राम कृष्ण-कृष्ण, ओम-ओम,इत्यादि।

इसका अभिप्राय यह होता है कि मन को (जिस में तरह तरह के संकल्प विकल्प सदा उठते रहते हैं) केवल एक ही संकल्प की तरफ लगने की आदत डाली जाय और इसी प्रकार उसे अनुशासन में लाया जाये।

जप दो प्रकार के होते हैं :—

(क) जिसका उच्चारण जीभ से हो।

(ख) मौन जप:—

जो मन से किया जाये। इसमें जबान कोई हरकत नहीं करती, सिर्फ मन हरकत करता है।

पहले पहल जप करने का अभ्यास जिम्हा से और फिर

धीरे धीरे मन से करना चाहिए।

(१७) ध्यान

मानव के स्थूल, मानसिक, बौद्धिक तथा अध्यात्मिक व्यक्तित्वों को मिलाकर एक ही रूप में इकट्ठे कर देने की विधि को ध्यान कहते हैं। इस में मन को बाह्यमुखी प्रवृत्तियों से हटा कर अन्तःमुखी किया जाता है और बुद्धिबल से मन पर शासन किया जाता है ताकि मन आप के अधीन होकर केवल उसी संकल्प पर दृढ़ रहे जो आप चाहते हैं:—

साधना की अवस्थायें

(१८) पहली अवस्था

अपनी आंखें बन्द कर लेवें। अपनी दृष्टि ऊपर की ओर करके, अपनी आंखों के बीच, माथे के मध्य भाग की तरफ ले जावें। आप की चेतना के सामने जो जो संकल्प उठते हैं उनको पहिचानिए और परखिए। विचारों का बहाव देखें। अच्छे, बुरे और जुदा जुदा किस्म के विचार आपके सामने एक न खत्म होने वाली नदी की धारा के समान एक अस्त व्यस्त रूप में बहते हुए दिखाई देंगे। घबराएं मत और विचारों को चलने दीजिए। केवल इस बात का विशेष ध्यान रखें। कि विचारों का प्रवाह चल रहा है और आप उसे केवल देख ही रहे हैं। आपको यह विश्वास हो जाना चाहिए कि आप और आपका मन दो पृथक,पृथक वस्तुयें है और जो मन है वह आपका अपना है, परन्तु आप मन के नहीं हैं।

थोड़े समय ध्यान करके आप उठना चाहें तो उठ जावें।

धीरे धीरे ध्यान करने के समय को बढ़ाएं। बहुत हठीले बनकर जल्दबाजी में मन को काबू करने की कोशिश न करें।

नहीं तो आप स्वयं अपना नुकसान कर लेंगे। शुरू शुरू में ही मन को बिगड़े हुए बालक की तरह उत्साह, प्रेम और बहलाने के साधनों से काबू में करना चाहिए। जब रोग, शोक, पीड़ा आदि के कारण मन खिन्न हो रहा हो तो ध्यान नहीं करना चाहिए।

(१९) दूसरी अवस्था

प्रति दिन नियमानुसार अभ्यास करने से समय पाकर आपका मन काबू में आ जायगा। यह समय हरेक व्यक्ति का अलग अलग होगा। मन महसूस करने लगेगा कि उसकी निगरानी हो रही और इस तरह विचारधारा ठीक तरह से चलने लगेगी। जब ऐसी अवस्था आ जाए तो पहले जिव्हा से और फिर मन से जप शुरू करना चाहिए। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि नाम के बिना कोई और संकल्प मन में न आवे। अगर आता है तो उसे निकालिए। धीरे धीरे ध्यान करने का समय १५–२० मिनट तक ले जावें परन्तु याद रहे कि जैसे संसारिक जीवन में होता है वैसे ही अध्यात्मिक जीवन में भी निराशाएं, पतन और रुकावटें आती हैं। ध्यान करना मत छोड़ बल्कि धीरे–धीरे अभ्यास करते रहें और समय को बढ़ाते रहें। अगर एक जीवित गुरु आपकी जिन्दगी में इस समय तक आ गया है तब वह समय समय पर आपको इस दशा में सहायता देगा।

(२०) तीसरी अवस्था

धीरे धीरे प्रतिदिन नियमानुसार अभ्यास करने से एक ऐसी अवस्था उचित समय पर आनी चाहिए जब आप मानसिक जप भी छोड़ने के योग्य हो जायेंगे और मन सभी प्रकार की क्रियाओं से रहित हो जायगा।

अब आप एकाग्रता के ऐसे विन्दु पर पहुंच चुके हैं।

जब कि आप अपने प्रिय इष्ट का रूप अपने मष्तिष्क में अपने ही मन से बना सकते हैं और उसे अपनी बन्द आंखों से देख सकते हैं। लेकिन इस बात को अच्छी तरह से समझ लें कि जो इष्ट आपको इस समय दीखता है वह बाहर से आपके अन्दर नहीं आया है परन्तु आपके मन ने स्वयं ही एकाग्र होकर खड़ा है।

जब यह अवस्था प्राप्त हो जाए तो मन इस प्रकार का अनुभव बार बार करने की तीव्र इच्छा स्वयं करता है और ध्यान करना एक आदत सी बन जाती है। जिस से आप को आनन्द प्राप्त होता है। इस अवस्था में आप अपने भीतर एक विशेष सब तरह की उन्नति देखेंगे। आप बेहतर स्वास्थ्य और खुशहाली का आनन्द प्राप्त करेंगे। आप कुदरत के काम को ज्यादा अच्छे ढंग से समझ सकेंगे। आपको शान्ति और सन्तुष्टि प्राप्त होगी। वह मन जिसको इच्छानुसार एकाग्र किया जा सकता है, एक बड़ी भारी ताकत है। जोकि संसारिक जीवन में आपकी हरेक तरह की इच्छा पूर्ति के लिए (जिस समय और जहाँ भी आप चाहें) सदैव तैयार रहता है।

(२१) इससे भी आगे उन्नति

ऊपर लिखी गई मानसिक अवस्था आध्यात्मिक मार्ग में अन्तिम अवस्था नहीं है, अगर आप इस मार्ग पर चलते हुए और उन्नति करना चाहते हैं तो ध्यान करना जारी रखें और एक सुन्दर जीवन व्यतीत करने की कोशिश करें। प्रकृति अपने नियमानुसार स्वयं ही, समय आने पर, आध्यात्मिक रूप से उन्नत किसी महापुरुष (गुरु)का आप के साथ मेल करवा देगी। वह गुरु आपकी इससे आगे की उन्नति के लिए स्वयं क्रम अनुसार आदेश देने का उस समय प्रबन्ध करेगा जब कि आप इस संसार के भोगों को भोग कर विरक्त

हो चुके होंगे। तब आप को उसके आदेशों का बड़ी मेहनत से पालन करना चाहिए। लेकिन याद रखें कि आपका नियम-पूर्वक अभ्यास, प्रयत्न और सहनशीलता ही आपको उन्नति के मार्ग पर और आगे ले जावेंगे। इसके लिए कोई भी छोटा मार्ग या पगडण्डी नहीं है। आध्यात्मिक मार्ग में आप को शोर्ट कट का कोई वायदा नहीं कर सकता। जितना ही ऊंचा आप चढ़ेंगे उतना ही धीरे धीरे आप को चढ़ना होगा।

अध्यात्मिकता के व्यापारियों और धर्म के उन ब्लैक मार्कीटरों से बचें जो कि दावा करते हैं और वायदा करते हैं कि एक हफ्ते या महीने या साल के अन्दर हो सारी आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है, यदि उनको इस काम के लिए उचित मूल्य और सामग्री इत्यादि का प्रबन्ध कर दिया जाए।

—:०:—

पहिली बात तुम कौन हो ?

लेखक महर्षि शिव व्रतलाल वर्मन

हम बार बार कहते हैं। इसते संत और महात्माओं ने बार बार कहा है कि "जो वह है वही तुम हो।" तुम उससे पृथक नहीं हो। न उससे भिन्न हो। जो समुद्र है वही बुन्द है। जो सूर्य्य है वही उसकी किरण है। जो वस्तु रेत है वही रेत का एक कण है। जो ब्रह्म है वही जीव है।

बुन्द समाना सिन्ध में, यह जाने सब कोय।
सिन्ध समाना बुन्द में, बिरला माने कोय॥

मगर यह बात तुम्हारी समझ नहीं आती। इसके तीन कारण हैं। प्रथम तुम्हारा चित्त सत के ज्ञान की ओर आकर्षित नहीं है। दूसरे विरोधी विचार उसमें भरे हुये हैं जो तुझको भरमाते रहते है। तीसरे तुम प्रश्न के एक ही अग की ओर दृष्टि रखते हो। यह दोष है। दोष रोग का नाम है। रोगी स्वास्थ्य से बचित रहता है। दोष या अपूर्णता में पूर्णता नहीं रहती। जो बन्धन में है वह मुक्ति के नियम से अन्जान है, क्योंकि दोष रोग और बन्धन की अवस्थाये चित्त को बिखरा हुआ रखती हैं। बेचैनी (अस्थिरता) इसका परिणाम होता है। अस्थिर व्यक्ति की बुद्धि कब ठिकाने रही है। जिसने अपने चित्त को जिस ओर लगाया, वही दृष्य तो देखेगा। दर्पण का अवरा (ऊपरी पल्ला) दिखाई पड़ रहा है। अस्तर की आर दृष्टि नहीं है। दर्पण में अपने शरीर का केवल एक भाग देखते हो। तुम्हारे पीछे क्या है इसकी तुमको लेशमात्र भी खबर नहीं रहती और तुम बेसुध बने रहते हो और काल अर्थात् समय इच्छानुसार समय और रहस्यमय समय के विचार का शिकारी तुम पर हर क्षण आक्रमण किया करता है। ऐसी दशा में तुमको कोई समझाये

भी तो कैसे समझाये और क्या समझाये। मछली पकड़ने वाला पूर्णतया मछली पकड़ने के काम में व्यस्त है। पीछे से शेर आ गया और उसे दबोच लिया और मछली के लालच में वह स्वयं उसके मुँह का ग्रास बन गया। यह तुम्हारी दशा है।

जब तक तुमको जानकारी न हो, जब तक तुम प्रश्न के सब पहलुओं पर दृष्टि न डालो, जब तक तुम्हें असलियत का ज्ञान न हो, तब तक तुम काल के आक्रमणों से कैसे बच सकते हो। यह सोचने समझने और जानने पहिचानने की बात हैं। तुमको जीवन से भ्रम में डालने वाली प्रीति है। तुम बुरी तरह मृत्यु के शिकार हुआ करते हो। जो जन्म लेगा उसे मरना पड़ेगा जो हसेगा, वह हसा जायगा और उसमें रोने की भी टेव होगी तुम द्वन्द की अवस्था में रहते हुये इनकी भी समझ नहीं रखते। जिसने किसी एक बस्तु से मन लगाया वह दूसरे के भय के भ्रम में पड़ गया। यह कारण है कि तुम दुनिया में बुरी तरह से मारे जा रहे हो और काल के पंजे में फसे हो। जहाँ जीवन है वहाँ हीं तो मृत्यु है। जहां खिलावट है वहाँ पर मुरझाना है। तृप्ति के साथ भूक प्यास, आशा के साथ निराशा रहना अनिवार्य है।

ज्ञानी, ध्यानी, योगी, भोगीं, सब ही तो भूले हुये हैं। यदि कोई उनसे खुलकर बात चीत करे तो लड़ाई झगड़े की नौबत आती है। बाद बिवाद बड़ जाता है। तर्क वितर्क शैतान की आँत की तरह बड़ जाती है। इनमें सचाई के जिज्ञाशू कौन हैं! कठिनता से थोड़े से आदमी कहीं मिलेंगे और उनको भी गुरु हाथ नहीं आया। भ्रम की फाँसी गले का हार हो जाती है। न कोई सोचता है न कोई समझता है। जिधर देखिये उधर अज्ञान छाया हुआ है और चारों और प्रलय का शोर मचा हुआ है जिसका परिणाम कुछ भी नहीं होता। मरने वाले मरते हैं और जीवन के प्रेमी अपनी बारी पर उन्हीं के पग चिन्हों पर

पांव घसीटते हुये चले जा रहे हैं।

धर्म बन्धन है। विश्वास और भ्रम गले की फाँसियाँ हैं। इनसे लाख जन्म में भी तुमको सचाई का पता नहीं मिलेगा। प्रयत्न कर देखो ! परीक्षा करलो। यह भी तो काल की फाँसियाँ हैं मगर बन्दों (दासों) को क्या कहा जाय वह तो बन्दे (दास) ही हैं। बन्दे (दास) सदा बंधे ही रहते हैं। इनको मुक्ति कौन दे

हाथी अटका कीच में, काढे कोई समरथ्थ।
या छूटे बल आपने, या धनी धनी पसारे हथ्थ ॥

दूसरी बात-- तुम कौन हो

जब तक तुम यह न जान लोगे कि तुम कौन हो, तब तक तुमको मुक्ति का अधिकार प्राप्त न होगा। तुम पढ़ते हो लिखते हो, वेद, पुराण, शास्त्र कुरान सब ही को घोलकर पी जाते हो मगर इनसे तुम्हारे हाथ क्या आता है ! इनको पढ़ कर यदि तुम को यह दावा होता है कि इनसे तुम सार भेद को पा लोगे तो भाई ! गंगा जाकर अपना मुँह धो डालो। स्वयं इनमें सारे भेद के खोलने का सामान होता तो पंडित घर घर घूमकर दान दक्षिणा के ख़ब्त में न पड़े रहते और मुल्ला मसजिद की मीनारों पर चढ़कर बाँग देते हुये दिखाई न पड़ते। तोते की तरह टें टें करने से क्या होता है ! वह लाख राम राम कहा करे अन्त में बिल्ली का शिकार हो जाता है।

इन सब बातों को तुम भली प्रकार समझते बूझते हो। यदि ब्रह्मा जी भी साधारण मनुष्य के रूप में आये तो शायद तुम उनकी जुबान बन्द कर सकोगे मगर इस योग्यता और बुद्धिमता और विद्वता से किसी को मिलता क्या है ! क्या तुम बिलकुल अंधे ही हो रहे हो जो आँखें खोलकर इनके चाल ढाल स्थिति और परिणाम को नहीं देखते ! हाँ, इनकी तरह तुमको भी भिकारो और दूसरों का आश्रित बनना है तब तो हमको

कुछ कहना सुनना नहीं और यदि इधर से मन तृप्ति हो गया है तो हमारे पास आ जाओ तो हम तुमको ज्ञान तत्व का गुरु बता देंगे। तुम बाजार में एक पैसे की हाँडी मोल लेने जाते हो। उसे खूब ठोक बजाकर देख लेते हो कि कहीं टूटी फूटी तो नहीं है। मिट्टी की हाँडी की ओर तो तुम्हारा इतना ध्यान रहता है लेकिन क्या तुमने कभी भूलकर भी अपने देह, मन, बुद्धि और आत्मा और अपने निज स्वरूप की ओर भी ध्यान दिया है। तनिक भी नहीं। रात दिन बातें बनाते रहने से तुम को फिर लाभ क्या होता है।

लाख बातों की एक बात यह है कि तुम अपनी ओर ध्यान दो। अपने मन से पूछो—"मैं कौन हूं? दुनियाँ में क्यों आया? यह दुनियाँ क्या है?" और यह प्रश्न तुम्हारे नव जीवन रूपी इमारत की नींव सिद्ध होगी। तुम इन पर सोच विचार करते हुये शरीर के मंडल से आत्मिक स्थिति की ओर झुकोगे कुछ न करो। केवल यह प्रश्न बार-बार अपने मन से पूछा करो और क्रमशः तुम में पात्रता, योग्यता और ग्रहण शक्ति उत्पन्न होने लगेगी और वह स्वयं अपना रास्ता खोज कर लेगी?

हम क्यों ईश्वर की प्रार्थना करें! धार्मिक लोग उत्तर देंगे "तुम को स्वर्ग मिलेगा। परियों का नाच देखोगे" मगर सोचो तो सही यह स्वर्ग, यह अप्सरा शारीरिकता के सामान हैं या आत्मिकता के। क्या इन शब्दों में इन्द्रिय भोग की झलक मौजूद नहीं है? यदि बैकुण्ठ में जाकर आनन्द लूटोगे तो फिर नर्क कुण्ड का मुँह देखना पड़ेगा। अप्सराओं की संगत नर्क कुण्ड की निशानी है। क्या तुम हन्ही मिथ्या बातों के लिये ईश्वर की पूजा करते हो? राम राम!

पाँडे ने क्या धर्म बताया, गले में डाली फाँसी।
गोरख धंधा खूब मचाया, देख आवे मोहि हाँसी॥

मुल्ला मसजिद बाँग गुजारे, हूर नूर की आसा ।
यह दोजख की राह दिखावे, अद्भुत अजब तमाशा ।।
हम ने मन में देख विचारा, मुल्ला पंडित भूले ।
वह हर वह अप्सरा मागें, भरम हिडोले झूले ।।

'ईश्वर क्या है जिसकी शिक्षा दी जाती है ?" पंडित कहते है— 'केवल राम राम कहो । यह प्रश्न न करो नहीं तो नास्तिक होजाओगे ।" मुल्ला डराता है— " यदि यह पूछोगे तो नास्तिक बन जाओगे और गर्दन अभी तलवार से नापी जावेगी ।,, यह तो दशा हो रही है ।

संसार में दो धर्म हैं— हिन्दू और इस्लाम । तीसरे धर्म का कही पता ही नहीं है । यह विचार पहिले कबीर साहब के चित्त में आया । नानक साहब ने उसी को दुहराया और हम भी वही बात अपनी बारी पर कहते हैं । तुम पूछोगे— ' फिर ईसाई मुसाई, शिन्टो, ताविजन आदि क्या हुये ! यहाँ तो ल खों ही प्रकार के धर्म दिखाई दे रहे हैं ।,, बहुत अच्छा ! हमसे सुनो । धर्म तो केवल दो हो हैं- एक आर्य धर्म जो सबसे प्राचीन है और जिसे हिन्दू धर्म कहते हैं । इसकी शाखाओं में पारसीइज्म जैनिज्म, बौद्धिज्म, ताविज्म, शंटाइज्म आदि सम्मिलित हैं । इनके अतिरिक्त यदि और कोई नया इज्म जैसे सूफी इज्म आदि इससे मिलता जुलता दिखाई दे तो समझ लो कि यह किसी न किसी रूप में हिन्दू धर्म से सम्बन्ध रखने बाला दल है । प्राचीन यूनानी। मिसरानी आदि सब इसी से निकले थे । जाँच कर देखो स्वयं ही मान जाओगे । दूसरा मार्ग यहूदी और ईरानियों का है जो मुसाई कहे जा सकते है । मुसलमान ओर समस्त समष्टिक दल इसी की शाखें हैं । यह भी असल और नसल से यहूदी ही हैं । अब रह गये ईसाई ! उनके बारे में सुनो । जातियता की दृष्टि से यद्यपि यह यहूदी हैं मगर धार्मिक दृष्टिकोण से यह

हिन्दू हैं। योहन बप्तिस्मा देने वाला बौद्ध था। मसीह एक ब्राह्मण का शिष्य था और वह हर जगह ब्राह्मणइज्म के बचन वर्णन किया करता था। ईसाई लाख छिपायें मगर उसके बचनों को क्या करेंगे। वह स्पष्ट शब्दों में कहता है—"मैं और मेरा बाप दोनों एक हैं।,, "ईश्वर का साम्राज्य तुम्हारे अन्दर है।' आदि आदि। इसके अतिरिक्त वह अपने आपको ईश्वर का अवतार भी बताता है जो नितान्त हिन्दू विचार धारा है। सिवाय हिन्दुओं के दुनिया में और कौन जाति अवतार मानती है! तनिक सोचो तो सही। इसको भी जाने दो। क्या स्वयं मसीहियों में अब तक ऐसी अंजीलें (पुस्तक का नाम) नहीं मौजूद हैं जिन में मसीह के हिन्दुओं के शिष्य होने की स्पष्ट घटनाओं का पता तक लगता है। हम तो टोविच रूसी को नहीं मानते उसे जाने दीजिये और दूसरी तो अमरीका और योरुप में प्रकाशित का गई हैं। उन्हें देखिये। स्वयं विश्वास हो जायेगा। हाँ, यह हम मानते हैं कि मसीह यहूदी जाति से था। इस कारण उसके आईन (नयमों) में बहुत सी ईरानियों की रस्मी बातें मौजूद हैं। फिर मसीह की असली शिक्षा है कहाँ! वर्तमान क्रिश्चयनिटी (ईसाई धर्म) का सम्बन्ध सेंटपाल से है जो उसका पैदा करने वाला था। वह यहूदी था। इस कारण से यहूदियों की बहुत सी बातें हजरत मसीह की शिक्षा में शामिल कर दी गई है।

यह वाक्य आपत्तिजनक था मगर कहने का अभिप्राय केबल यह है कि दुनिया में केवल दो ही धर्म हैं— एक आर्य धर्म दूसरा अनार्य्य यहूदी धर्म। एक के अनुयायी तो एक स्थानीय रहने के प्रेमी हैं। और दूसरे के विश्वासी बहु स्थानों में रहना अच्छा समझते हैं। यह इनमें अन्तर है।

इन दोनों धर्मों में ईश्वर ईश्वर तो सब रात दिन किया

करते हैं मगर ईश्वर के विषय में कौन सोच विचार से काम लेता है !

संतों ने इस कारण से हिन्दू और मुसलमान को सम्बोधन किया है। संतों का कथन है और उच्च स्वर से कहना है कि— "जब तक तुमको अपनी समझ नहीं है तुम कभी ईश्वर को नहीं जान सकते हो। बिना जाने बूझे, जो कुछ प्रार्थना करते हो वह निरर्थक है।, कहा है—

आप आपको आप पिछानो। कहा और का नेक न मानो॥

यह विशेष आदेश है और यह आदेश स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है। अपने को जान लो और तुम ईश्वर को जान सकोगे। उस समय उसकी भक्ति अधिक आनन्द देगी। यदि ऐसा नहीं करते तो फिर भ्रमों की जंजीर में जकड़े पड़े रहोगे।

पूछो-- "हम कौन हैं ? और तुमको उत्तर दिया जायगा। ईश्वर के प्रश्न को थोड़ी देर के लिये तह कर रक्खा क्योंकि धार्मिक लोग बुरी तरह तुम्हारे पीछे पड़ेंगे और इनसे पल्ला छुड़ाना कठिन होगा।

तीसरी बात—तुम कौन हो

तुम मनुष्य हो। मनुष्य में हाथ, पाँव, नाक, कान, भुजा, कलाई, उंगली, रोंगटे, हड्डी माँस सब ही होते हैं। शरीर के अनेक अंग हैं। हृदय, मस्तिष्क, आत्मा आदि कितने अग तुम अपने में देखते हो। जब हाथ की उंगली की ओर ख्याल है, पाँव की उंगली की ओर ध्यान नहीं है। जब चित्त में क्रोध या शोक है तब शान्ति से स्वयं ही कोसों दूर हो जाते हो। तुम में जहाँ क्रोध और ईर्ष्या है साथ ही तुम्हारे अंदर शान्ति भी तो है कौन वस्तु है जो तुम में या तुम्हारे अंदर नहीं है मगर इस पर कभी ध्यान नहीं करते। जब एक है तब दूसरा नहीं। जब दूसरा है तब तीसरा नहीं। अनेकता के भ्रम ने एकत्व की ओर से

चित्त को फेर रक्खा है ।

जब एकत्व का ध्यान होता है अनेकता की ओर से आँख मिच जाती है। यह ऐसी साधारण बातें है जो हमारे सभझाने से थोडी देर के लिये समझ तो जाते हो मगा उस पर ठहरते नहीं क्योंकि स्वभाव और अभ्यास ने तुम को कुछ का कुछ बना रक्खा है ।

तुम जब देहाभिमानो हो तो आध्यात्मिक नहीं रहते और जब आध्यात्मिक होते हो तो देहाभिमानी नहीं बनते । बार हो तो पार नहीं और पार हो तो बार नहीं। यद्यपि देह और आत्मा, वार और पार तुम में ही है, मगर भ्रम को क्या किया जाय ! भ्रम ने अपने चंगुल में बुरी तरह तुमको जकड़ रक्खा है और तुम बहमी बन गये हो और केवल अपने भ्रम के कारण रात दिन व्याकुल रहते हो ।

क्या वस्तु है जो तुम में नहीं ! तुम अच्छे हो, तुम बुरे हो मगर अफसोस तो यह है कि जब अच्छे हो तब बुरे नहीं और जब बुरे हो तब अच्छे नहीं, क्योंकि एकपक्षीय डिग्री करने, एकपक्षीय (यकत्तर्फा) राय कायम करने के अभ्यस्त हो गये हो ।

इसी प्रकार स्वास्थ्य और रोग के भँडार तुम आप हो मगर जब स्वस्थ हो तो रोगी नहीं। जब रोगी हो तो स्वस्थ नहीं । तुमने न स्वास्थ्य की असलियत समझी न रोग का ध्यान दिया। गलती और अनसमझी में पड़कर स्वास्थ्य की ओर चित्त लगाया। स्वास्थ्य को अच्छा समझा। जब तक चित्त की वृति स्वास्थ्य की ओर है तब तक प्रसन्न हो मगर साथ ही रोग के भ्रम को नहीं छोड़ते। परिणाम यह होता है कि चित्त जहाँ तनिक हटा रोग ने उसी समय तुम्हारा गला दबोच लिया क्योंकि स्वास्थ्य के साथ रोग और रोग के साथ स्वास्थ्य का लगाव है। एक दशा में रहना सम्भव नहीं है क्योंकि चित्त में

दोनों ही प्रभाव रहते हैं। इसी कारण से तुम कभी ऊँचे जाते हो कभी नीचे। एक द्वन्द का हिंडोला है जिसमें तुम रात दिन झूलते और पैर मारते रहते हो। कभी इतने ऊँचे विचार वाले हो जाते हो कि तुम्हारी दृष्टि में राजा तक की वास्तविकता नहीं रहती और कभी इतनी साहस हीनता आ जाती है कि अपने को तुच्छ समझने लगते हो। यह तुम्हारी दशा है। तुम स्वयं ही परिणाम निकाल लो कि जो व्यक्ति दो पने के भ्रम में फँसा होगा वह कब तक और कैसे प्रसन्न रह सकता है।

प्रसन्नता और अप्रसन्नता दोनों ही तो तुम्हारे मन के भाव हैं। कभी तुम दरिद्रता में ऐसे प्रसन्न हो जाते हो कि धनी को बिल्कुल हेच समझने लगते हो और कभी धन द्रव्य रखते हुये भी ऐसे व्याकुल बन जाते हो कि एक बेवश और दीन निर्धन को अपने से अधिक उच्चतर देखने लगते हो। यदि इस द्वन्द की दशा पर तनिक भी विचार करो तो तुमको अभी क्षण मात्र में समझ आ जाय कि प्रसन्नता और अप्रसन्नता दोनों ही प्रभाव तुम्हारे अन्दर हैं। कहीं बाहर ढूढ़ने के लिये जाने की आवश्यकता नहीं है। मगर तुम में से कितने लोग ऐसे हैं जो इन बातो की ओर ध्यान देते हैं। कठिनता से थोड़े से आदमी विचारवान निकलेंगे।

चौथी बात तुम कौन हो ?

तुम में देह है, मन है और आत्मा है। तुम न केवल देह ही हो और न केवल आत्मा ही हो, किन्तु तीनों की मिली जुली सूरत हो। इससे तो तुम इंकार नहीं कर सकते लेकिन यदि इंकार करो तो फिर हम तुमको समझाने का प्रयत्न करें।

देह, मन और आत्मा यह तीनों तुम में मौजूद हैं और तीनों के प्रभाव से तुम प्रभावित रहकर कभी कुछ बन जाते हो। यह तुम्हारे डावाडोल रहने का कारण है। हम न फिलोसफी छांटते

हैं न ज्ञान ध्यान के उलझन में फंसाते हैं। बात स्पष्ट, सच्ची और खरी खरी कहते हैं। भाषा भी कैसी सीधी सादी ! यदि बच्चों जैसी भी बुद्धि रखते हो तो उसके सच्ची मानने में तनिक भी विरोध न होगा। हमको बुद्धि का अभिमान नहीं है। न हम में विद्वता का विकार है। साथ ही हम में कठोरता का दोष नहीं है क्योंकि हमने अपनी असलियत समझ ली है। यह सब हम में विद्यमान अवश्य हैं मगर हम इन सबसे ऊँचे हैं और कुछ और भी समझते हैं। इसी कारण तुमको भी ऊँची दृष्टि वाला बनाकर अपनी अवस्था पर लाना चाहते है। यह कारण है कि दूसरे धर्माचार्यों की तरह व्यर्थ के भ्रमों में नहीं फँसाना चाहते। हमको तुमसे कुछ लेना नहीं है क्योंकि हम तुम्हारे आश्रय नहीं है। जब हम बुद्धि और विद्वता तक की परवाह नहीं करते तो तुमको अपना चेला या आश्रित बनाकर अपने आधीन रखने के विचार में कैसे उलझेंगे। धन मान का हमारी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं है। फिर तुमसे हम क्यों किसी बात की इच्छा रक्खें। हाँ, तुम्हारी दीन और अपमानित दशा पर दया आती है। इस कारण कलम की जवान से यों ही कहते रहते हैं कि तनिक अपनी ओर ध्यान दो। जब हमारी तरह उच्च दृष्टि, उच्च विचार और उच्च साहसी बन जाओगे तो सुगमता से समझ लोगे कि जिसको तुमने धर्म, कर्म, मान, विद्वता और योग्यता समझ करु मन लगा रक्खा है, वह, नितान्त ही असलियत से रहित वस्तु है। जब तक इन झगड़ों में से किसी एक में पड़ोगे सदा परेशान रहोगे। चाहे तुम इस समय हमारी बात मानो या न मानो।

तुम हो दुनिया के तमाशा गाह आप।
क्यों तमाशों में पड़े करते हो पाप॥

पांचवीं बात--तुम कौन हो

सब का तमाशा तो तुम देखते हो मगर अपना तमाशा आप नहीं देखते। शहर के गली कूंचे में एक जादूगर आया। तुम उसकी ओर दौड़े। उसने भानमती का पिटारा खोला। चट्टे बट्टे थैलियों से निकाल कर कभी इधर रखने लगा कभी उधर। तुम लट्टू हो गये और उसको दो पैसे दे दिये। यह तमाशा दो पैसे का था। इससे अधिक उसका कोई मूल्य नहीं था। ऐसा ही खेल तुमको प्रिय है। लेकिन यदि तुमको कोई तमाशा प्रिय नहीं है तो केवल अपना तमाशा, जिस का मूल्य लाख रुपया है। इसे तुम भूलकर भी नहीं देखते। मुहताजों का तमाशा देखने वाला मुहताज ही तो होगा। हम चाहते है कि या तो तुम अपना खेल आप देखो या यदि यह नहीं हो सकता तो फिर हमारा ही खेल देखो। यह उससे तो अच्छा है। दो पैसे का खेल क्यों देखते हो? साहसी बनो, दृष्टि को ऊँचा करो। कब तक आश्रय के गड्ढे में पड़े हुए कष्ट भोगोगे।

हम स्वयं क्या हैं। चाहिए तो यह था कि तुम अपनी दशा, स्थिति और अपने स्वस्वरूप की ओर दृष्टि रखते लेकिन यदि ऐसा नहीं करते तो फिर हमसे आकर मिलो। इसे अभिमान न समझो। यह सच्ची बात है। देह, मन और आत्मा रखते हुए भी हम इन तीनों के ऊपर अपना कदम जमाकर सार तत्व के तमाशाइयों को अपना प्रकाश दिखाने आये हैं। हमको एक दृष्टि से देख लो और तुमको कुल तमाशाइयों से तृप्ति हो जायगी। यदि वह नहीं कर सकते तो इसी को करो। इसमें क्या लगता है? दो पैसे भी तो गाँठ से नहीं जाते। फिर तुम्हारे दो पैसों की हम को परवाह क्या है! हम निर्धन तो नहीं हैं। न हमारे यहाँ गुरआई है न चेलाई है!

हमारे तमाशे देखने से क्या परिणाम होगा! तुमको

निज स्वरूप की समझ आयेगी और फिर तुम भी देह, मन और आत्मा की असलियत को समझकर हमारे जैसे बन जाओगे।

पारस में और सन्त में, ये ही अन्तर जान।
यह लोहा कचन करे, वह करलें आप समान॥

जो हम है वही तुम हो। जो तुम हो, वही हम है। तुम अभी इसको नहीं समझते। तनिक हमारी संगत में उठो बैठो। हमारे जीवन व्यवहार को देखते चलो। आप ही एक दिन समझ जाओगे।

'तुख्म तासीर सुहबते असर'

तुम हम से अलग नहीं हा और न हमसे भिन्न हो। हाँ, अपने पराये के भ्रम में पड़ कर दुखी हो रहे हो और वह व्यर्थ की परेशानी है।

छटवीं बात तुम कौन हो ?

हाथ कहता है मैं उंगली नहीं हूँ। उंगली कहती है मैं हाथ नहीं हूँ। वाह जी वाह !

लाल बुझक्कड़ बूझिया, और न बूझे कोय।
पाँव में चक्की बाँध कर, हिरना कूदा होय॥

क्या लाल बुझक्कड़ की कहानी तुमने सुनी है ? यदि नहीं सुनी तो हमसे सुन लो। कातिक का महीना था। खेत खूब जुते हुए थे। वर्षा के बाद पूर्वी जिले के किसान खेतों को खूब जोतते हैं। रात के समय लड़के उनमें कबड्डी और बदी खेलते हैं। हम किसी समय में बदी और कबड्डी खेलने के बड़े शौकीन थे। समय समय की बात है ! कभी कुछ कभी कुछ ! समय सदा एक दशा में नहीं रहता। अदलना बदलना इसका स्वभाव है। सुबह होती है शाम होती है, उम्र यों ही तमाम होती है।

आज आई चमन में फस्ले बहार।
कल खिजां ने बिगाड़े कारोबार॥

बचपन, जवानी, बुढ़ापा समयाधीन हमारे सहारे ही रहते हैं। हम इनमें से किसी के भी सहारे नहीं हैं। हमारी दशा इन सबसे अलग है।

खेत जुते हुए थे। रात के समय किसी जमींदार का हाथी छूट गया और इन खेतों से होकर गुजरा। उसके पाँव के चिन्ह खेत में बन गये। हाथी तो चला गया। प्रातःकाल हुआ। किसानों ने पाँव के चिन्ह देखे। बड़ा आश्चर्य हुआ। सोचा समझा मगर किसी की समझ में कोई बात नहीं आई। अन्त में गाँव के समझदार लोगों को इकट्ठा किया ताकि यह रहस्य हल हो जाय। ज्ञानी ध्यानी किसान आये। सब अपने सिरों को टटोलते रहे। बहुत सोचा मगर यह रहस्य किसी से भी हल न हो सका। उस बुद्धिमानों के जमघट में एक लाल बुझक्कड़ भी था। सबने इनकी ओर दृष्टि की। "भाई! रहस्य हल नहीं होता। तू सबसे अधिक बुद्धिमान है। तू इसकी गुत्थी को सुलझा दे।" लाल बुझक्कड़ प्रसन्न हुए। अंधों में काना राजा और मोतियाबिन्द के मरीजों में ऐंचाताना बादशाह! इन्होंने बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया—"भाई! यह बात तो साधारण है। सुनो—जंगल में आया एक हिरन। उसने पाँव में बाँध ली एक चक्की! और पैंतरा बदल लगा कनौतियाँ भरने! इधर से उधर छलागें मारता हुआ निकल गया। यह उसकी चक्की के चिन्ह हैं। इसके अतिरिक्त यह और क्या हो सकते हैं।" किसान प्रसन्न हुए। गुत्थी सुलझ गयी और लगे लाल बुझक्कड़ की बुद्धि की प्रशंसा के पुल बाँधने। "भाई क्यों न हो, ईश्वर की दी हुई बुद्धि रखते हो। दूर दूर की सूझती है।"

उस समय से पूर्व के जिलों में यह दोहा सबकी जुबान पर रहता है।—लाल बुझक्कड़ बूझिया, और न बूझे कोय।

पाँव में चक्की बाँधकर, हिरना कूदा होय।

इसी प्रकार इस समय के ज्ञानी, ध्यानी, पंडित, मुल्ला बने बनाये लाल बुझक्कड़ हैं। उनकी बातें सुनकर सब प्रसन्न हो जाते हैं। लेकिन यह नहीं सोचते कि हिरण ने अपने पांव में आप ही चक्की बांधी या किसी और ने बांधी। फिर पाँव में चक्की बाँधकर वह कूदा किस तरह होगा। धर्म के मतवाले अनाप शनाप बातें बनाकर सबको भरमाते रहते है और दुनियां उनके चगुल में फँस जाती है। जब गुरु नानक जैसे महापुरुष जैसे महापुरुष समझाने बुझाने का प्रबन्ध करते हैं तो उन्हें दम्भी पाखंडी की पदवी दी जाती है। क्यों न हो, लाल बुझक्कड़ के भाई बन्द जो ठहरे। इस बुद्धि पर रोना आना है। यह दशा है।

बहुत अच्छा ! हाथ उंगलियों से अपने को अलग समझता है। लेकिन यदि उंगलियां न हो तो क्या हाथ को हाथ कह सकोगे ! इसी प्रकार तुम भी हो और अपने आप को कुछ और समझ बैठे हो। देह तो देह ही है। शारीरिक व्यवस्था का संगठन ही शरीर कहलाता है। शरीर के एक अंग को तो शरीर नहीं कहा जाता है।

अंग अंग है। शरीर शरीर है। अंग शरीर से अलग नहीं है और शरीर अंग से पृथक नहीं है। दोनों मिलकर एक हैं। अलग करने वाले के भ्रम से अलग होकर अनेक हैं मगर इनका मिलाप अपेक्षाकृत असली है। इनकी पृथकता भ्रम है। इसी प्रकार प्रकृति की व्यवस्था में तुम्हारी हैसियत भी है। तुम असल में सबसे मिले हुए हो और भ्रम में पड़ कर अपने आपको पृथक मान रहे हो।

हर एक अंग का काम भिन्न है मगर इनका काम मिल कर शरीर का संगठित और पूरा काम कहलाता है। आंख देखती है। कान सुनता है। न आंख सुन सकती है न कान देख सकता

है। लेकिन देखने और सुनने के कार्य को यद्यपि अंगों की दृष्टि से तुम अलग अलग कह लो मगर शरीर की दृष्टि से उसे अलग कैसे कह सकते हो। इसे तनिक सोचो तो स्वयं समझने लगोगे कि तुम क्या हो ?

साँतवीं बात--तुम कौन हो ?

क्या तुम शरीर हो ? यदि शारीरिकता की दृष्टि रख कर तुम अपने आपको शरीर वाला ही मान रहे हो, तो भी इस मानने से तुमको सृष्टि की व्यवस्था के शारीरिक पने से पृथकता नहीं है। यह शरीर रूपी जगत है। चाहे कितना ही बड़ा शरीर मान लिया जाय और चाहे तुम अपने आप को कितना ही छोटा मान लो मगर अपने शरीर के अंगों को दृष्टि से तुम इसके हिस्से ही हो। जब तुम्हारे शरीर का कोई भाग शरीर के दृष्टिकोण से तुम्हारे शरीर से अलग नहीं है, तो फिर शरीर वाले होकर सृष्टि के शरीर से अलग किस तरह किये जा सकते हो। यह न केवल गलत है किन्तु असम्भव ही है। तुम ब्रह्माण्ड के शारीरिक साम्राज्य से उसी तरह मिल कर एक हो जिस तरह तुम्हारे हाथ पांव तुम्हारे शरीर से अलग नहीं हैं और यदि अलग समझते तो तुमको बेचैनी होगी वियोग में बेचैनी और मिलाप में चैन होता है। यह एक बच्चा भी जान सकता है।

कहानी सुनो। यह कहानी उपनिषदों की गाथा है (इसको हमने अपने ढंग पर लिखा है) उपनिषद वेद हैं और वेदों में सबसे वह अधिक महत्व रखते हैं। वेद तीन हैं–मंत्र या संहिता भाग, ब्राह्मण भाग और ज्ञान भाग। यही तीन त्रिवेद कहलाते हैं। इन त्रिवेदों मैं उपनिषद सिर के भाग माने गये हैं। वह संख्या में ११ हैं। तुम्हारे शरीर में भी पांच कर्मेन्द्रिया, पांच ज्ञानेन्द्रिया और एक मन ग्यारह ही होते हैं। इन ग्यारहों की जड़ तुम्हारे सिर में है। इसी तरह वेदों की जड़ उपनिषदों में है

क्योंकि उपनिषद वेदों के सिर हैं। इस दृष्टि से वह ग्यारह माने गये हैं अन्यथा इस ग्यारहवें की आवश्यकता नहीं थी। अधिक विवण करने से विषय बढ़ता है। अतः संकेत रूप में तुमको समझाया जा रहा है।

कहानी यह है कि एक बार मनुष्य के शरीर के अंगों में झगड़ा पैदा हुआ। सबने मिलकर पेट का विरोध शुरू किया। हाथ ने कहा मैं इसी पेट के लिए काम करता रहता हूँ। पाँव बोला कि मैं इसी के लिए दौड़ता और चलता फिरता हूँ। जिभ्या बोली कि इसके लिए मुझे बोलना, चाखना, चखना और ग्रासों को निगलना पड़ता है। आँखों ने कही कि हम देखती भी इसी के लिए हैं। कानों ने कहा कि हम इसके सिवाय और किसी के लिए सुनते नहीं हैं। नाक ने भी उलाहना दिया कि यदि पेट न होता तो मैं क्यों सूंघा करती। दाँत बोले कि पेट ही हम से भोजन की चक्की पिसवाया करता है। और भी इसी तरह कहने लगे। तात्पर्य कि सब के सब पेट के शत्रु हो गये और लगे निन्दा के दफ्तर खोलने। सब ने सभा की और ऐसे प्रभावशाली व्याख्यान हुए कि पेट बेचारा चुपचाप सुनता रहा। अन्त में विरोधियों ने मिलकर सलाह की कि हमको पेट के लिए काम करने की आवश्यकता नहीं है। अच्छा यह है कि हम हड़ताल कर दें ताकि पेट की अक्ल ठिकाने आ जाय। सबने एका करके चुप्पी साध ली। पेट ने तनिक विरोध नहीं किया कि तुम ऐसा क्यों करते हो। एक दिन बीता, दो दिन बीते, तीन, चार, पाँच, छै, सात दिन बीत गये। हड़तालियों ने अपनी दुकानें नहीं खोलीं। परिणाम यह हुआ कि सब के सब दुर्बल हो गये। आँखें पथरा गईं। उनमें कीचड़ आ गई। जिभ्या पर मल जम गया। वह लड़खड़ाने लगी। हाथ पांव काँपने लगे नाक में टेड़ापन छा गया। तात्पर्य कि सबकी दशा बिगड़ गई।

तब हड़तालियों ने विवश हो एक सभा फिर की और सोचने लगे यह क्या हो गया। कोई लात उनकी समझ में नहीं आई। उस विवशता की दशा में पेट ने उनसे कहा—"मूर्खो यह तुमने क्या किया? ममझ बूझ तो तुम में है नहीं और चले मेरा विरोध करने। तुमने न अपनी हैसियत समझी न मेरी। व्यर्थ अपना शत्रु और दास बनाने वाला समझ कर विरोध करने पर तुले बैठे हो। तुम समझते हो कि तुम्हारा कारबार केवल मेरे भंडार भरने के लिए ही होता है और मैं ही तुम्हारी कमाई हड़प कर तुमको उससे वंचित किया करता हूँ। इस मूर्खता की भी कोई सीमा है। तुमको सोचना चाहिए था कि तुम जो कुछ करते धरते हो और कमाते हो उसका सूक्ष्म भाग तुमको ही मिला करता है। मैं तुम्हारे प्राप्त किये भोजन को अपने अन्दर पचाकर रक्त, माँस, मज्जा धातु आदि के रूप में तुमको बांटा करता हूँ। तब तुम में शक्ति आती है। तुमने यह कहावत सुनी है कि 'जब पेट में पड़ा चारा, तब नाचे लाग यिचारा।' जब पेट चारे से खाली, तब सब की हुई बेहाली।' तुमने हड़ताल की अच्छा किया। इसमें मेरी क्या हानि है! देखो तो सही, इस हड़ताल का फल क्या होता है और तुम किस परेशानी में होते हो!' तब सब अंगों ने अपनी गलती मान ली। जब मिल जुल कर पहिले की तरह काम करने लगे तब फिर उनमें शक्ति आ गयी और शरीर का कारबार होने लगा।

शरीर की दृष्टि से तुम सब की भी इस दुनिया में ऐसी ही दशा है। संगठन के बिना तुमको सुख चैन और शान्ति नहीं मिल सकती। इस संगठन को एकता या मिलाप कहते हैं। यह प्रकृति का शक्तिशाली सिद्धान्त है कि जिसको न मानने से अशान्ति और बेचैनी होती है।

आठवीं बात--तुम कौन हो?

शरीर की दृष्टि से तुम्हारी सीमित और आंशिक हैसियत दिखा कर सूझ सुझा दी गयी कि तुम सृष्टि में एक अंश होते हुए पूर्ण भी हो, यदि नहीं समझते तो क्या हर्ज है। आज नहीं तो कल अवश्य समझ

जाओंगे। यह एक बात हुई। अब दूसरी बात भी सुनो। यह भी उपनिषदों की गाथा है। जिस तरह पेट के विरूद्ध अंगो ने हड़-ताल बोल दी थी, उसी प्रकार एक बार यह मानसिक और बौद्धिक दृष्टि से आपस में लड़ने लगे। कोई कहता था कि मैं सबसे बड़ा हूँ. कोई कहता था कि मैं सबका सरेदार हूँ। नियम की बात है कि जब मनुष्य में बुद्धि और विवेक आ जाती है तो वह ऊधम मचाने लगते हैं। मन के चार भाग-चित, मन बुद्धि, और अहंकार हैं, जहाँ इनको शक्ति प्राप्त हुई फिर अशाँति बढ़ जाती है। बुद्धि आवश्यक वस्तु होती हुई भी गड़बड़झाला और उपद्रव मचाती है। यह बुद्धि मन का मुख्य अंश है। जो इसके जाल में फंसा बुरी तरह मारा गया। न दीन का रहा न दुनिया का। आप दुखी हुआ और दूसरों को भी दुखी किया। अब कहानी की ओर ध्यान दो।

जब बुद्धि बढ़ गई तो बुद्धिमान अंगों और सूक्ष्म अंगों को दूर की सूझी। आँखे ने कहा-बुद्धि के कुल कार्य का भार मेरी दृष्टि और देखने पर निर्भर है। कान बोला-सुनना न हो तो फिर किसीका काम हो चुका। नाक ने कहा-वाह! मैं न हूँ तो दुर्गन्ध और सुगन्ध की पहिचान कैसे हो सकेगी। जिभ्या ने कहा-मेरा महत्व सबसे मुख्य है। मैं संकल्प के प्रकट करो का आवश्यक अस्त्र हूँ। हाथ बोला-मैं यदि छूने और पकड़ने से मना कर दूँ तो जीवन कठिन हो जाय। पाँव बोला-वाह! मैं न चलूँ तो फिर मनुष्य एक ही स्थान पर पड़ा रहे। मैं सबका सरदार हूँ। मन ने कहा-तुम व्यर्थ डींग मारते हो। सबसे बड़ा तो मैं हूँ। चित बोला-बिना चित के कोई चेत नहीं सकता बुद्धि ने बल पूर्वक कहा-हर वस्तु का व्यवहार बुद्धि पर निर्भर है। अहंकार ने कहा-यदि मै नहीं तो फिर बुद्धि के निर्णय को दृढ़ कौन करेगा। इस कारण मैं ही सबसे श्रेष्ठ हूं।

लड़ने वाले लड़ते रहे। किसी की बात कोई मानने को तत्पर नहीं था। जब एक अखाड़े में सब पहलवान एक ही समय लड़ने वाले बन जाँय तो फिर परिणाम क्या होगा। धूल और ढाक के तीन पात ! यह तो आज कल के शास्त्रार्थी का हाल हुआ करता हैं। अपनी-अपनी ढपली अपना-अपना राग। एक भी तो दूसरे की सुनने या मानने को तत्पर नहीं। अहंकार का भूत सब पर सवार है। वह चैन नहीं लेने देता। फिर फैसला भी हो तो कैसे हो !

अन्त में शास्त्रार्थ करने वालों ने यह सलाह की कि एक-एक करके शरीर से सब निकलते जाँय और जिसके निकल जाने से शरीर बिल्कुल निरर्थक हो जाय वही सबका अधिष्ठाता माना जाय। राय उचित थी। सबने मान ली।

पैर की शक्ति सबसे प्रथम शरीर से निकली मगर शरीर बराबर गतिमान रहा। पाँव की शक्ति कुछ देर बाद लौटी, पूछा कि तुम कैसे जीवित रहे ? यह बोले जैसे लंगड़े जीवित रहते हैं। फिर हाथ की शक्ति निकली मगर शरीर का कुछ बिगाड़ नहीं हुआ। वह लौटी। पूछा- मेरे बिना तुम कैसे जीवित रहे ?' इन्होंने उत्तर दिया, जिस प्रकार लूले जीवित रहते है ?' फिर जिभ्या निकल गई। शरीर ठीक ठाक रहा। लौटने पर वही प्रश्न किया। सबने उत्तर दिया--जैसे गूंगे जीते हैं वैसे ही हम जीवित हैं।' कान ने कहा अब मैं जाता हू देखना है कि मेरे बिना क्या होता हैं ? वह गया और शरीर ज्यों का त्यों अपना काम-काज करता रहा। वह वापिस आया पूछा—'मेरी अनउपस्थिति में तुम कायम कैसे रहे ?' उन्होंने कहा--' जैसे बहरे रहते हैं। वह चुप हो रहा। आँखों ने कहा- "बहुत अच्छा ! अब हमारी बारी है। वह भी चली गई। शरीर की दशा में ऐसा कोई बिगाड़ नहीं हुआ। उन्होंने आकर

पूछा—'कहो हमारे न होने पर क्या दशा रही ?" उत्तर दिया गया–"जो दशा अंधों की होती है वही हमारी भी थी। तब नाक बाहर गई और शरीर की वही दशा रही जो नकटों की होती है। इसी प्रकार सबके आने जाने का क्रम चालू रहा मन ने कहा-'अब मेरी बारी है ! मैं जाता हूं। देखूं मेरे बिना तुम्हारा अस्तित्व बना रहता है।" वह चला गया और शीघ्र वापिस आया। हंस कर पूछा-'कहो क्या हुआ था ? उन्होंने कहा--'कुछ नहीं। जिस प्रकार पागल जीवित रहते हैं हम भी जीते रहे। वह बड़े अचम्भे में रहा। फिर चित चला गया। लौटने पर उसके प्रश्न का उत्तर दिया गया कि जैसे अचेत और बेहोश आदमी रहते हैं। बुद्धि ने कहा---"मैं सबसे बड़ी हूं। मैं रानी और सब मेरी प्रजा हैं।"वह भी चली गई लौटकर आने पर मुस्कराई। कहो अब भी समझ आई कि अहीं। "वे खिल, खिला कर हँसे --तेरे बिना हम उसी प्रकार जीते जागते रहे जिस तरह बेअक्ल होते हैं॥ बुद्धि चुप हो गई। तब अहंकार का तत्व बाहर निकला मगर शरीर का कुछ भी न बिगड़ा पूछने पर उससे कहा गया--'तेरे बिना हम उसी प्रकार रहे जैसे निस्वार्थ, निष्काम और बे परवाह मनुष्य जीवित रहते हैं।" इसको भी मुंह की खानी पड़ी। तात्पर्य कि यह समस्त इंद्रियाँ और इंद्रियाँ की शक्ति ने अपनी-अपनी परीक्षा की मगर हुआ क्या ! कुछ भी नहीं !

अन्त में प्राण ने बाहर निकलने की इच्छा प्रगट की। अभी उसने शरीर को पूर्णतया छोड़ा भी नहीं था कि हाथ पाँव इठने लगे। नेत्र प्रेकाश हीन हो गये। कानों में खूंट का मैल भर गया। जिभ्या निजीव हो गई। रक्त खुश्क, हड्डी निरर्थक धातु अगड़म बगड़म, नाक टेड़ी बुद्धि बेकाम, मन गतिहीन, चित्त शक्ति लोप ! यह सबके सब मुर्दा होने लगे और हाथ

बाँध कर बोले--प्यारे प्राण ! तू बाहर न जा। ज्ञात हो गया कि तू सबका अधिष्ठाता है। तेरे बिना सबका जीवन कठिन है। तू शरीर में रह। हम सब तेरी सेवा सुश्रूषा करते रहेंगे।'

प्राण ठहर गया। सबने उसकी अध्यक्षता स्वीकार की।

भाईयो ! तुम देह, इन्द्रियाँ, बुद्धि आदि सब कुछ रखते हुए प्राण हो मगर प्राण के अर्थ समझो तब काम निकले। प्राण वायु नहीं है। वायु उनकी गति को धार का नाम है।

नवीं बात--तुम कौन हो ?

यह प्राण ब्रह्म है मगर प्राण ब्रह्म की समझ थोड़े लोगों में है। यह ब्रह्म सबसे अधिक शक्तिशाली है। इसकी शक्ति की कोई सीमा नही है और शक्ति की परिभाषा से ऊँचा भी है।

उपनिषदों की गाथा है--"ब्रह्म ने सब देवताओं के लिए विजय प्राप्त की। ब्रह्म की विजय से देवताओं को बड़प्पन मिला। उन्होंने सोचा यह हमारी ही विजय है और हमारा बड़प्पन है। ब्रह्म ने इनके भ्रम को जाना और वह यक्ष रूप में प्रकट हुआ मगर देवताओं ने उसे नहीं पहिचाना। ब्रह्म का पहिचानना सुगम बात तो है नहीं। वह आपस में पूछने लगे "यह यक्ष कौन है ? मगर किसी ने उसका कुछ उत्तर नहीं दिया। तब देवताओं ने अग्नि से कहा- ऐ जात वेदस् ? तू जाकर पता लगा कि यह यक्ष कौन है ? अग्नि गई। यक्ष नेपूछा त् कौन है?अग्नि ने कहा--"मैं अग्नि हूं। जिसको चाहूँ भष्म कर दूं। उसयक्ष(ब्रह्म) ने एक तिनका उसके सामने रख दिया। "तू इसकोजला देतो मैं तुझे शक्तिशाली समझूं। अग्नि ने तिनके को जलाने के लिए अपनी सारी शक्ति लगादी मगर वह न जल सका। तब लज्जित होकर वापिस आई। तब देवताओं ने उस ब्रह्म का पता लगाने वायु को भेजा। ब्रह्म ने उससे प्रश्न

किया— "तू कौन है ? वायु ने उत्तर दिया-"मैं वायु हूं और सबको उड़ा सकती हूँ"। ब्रह्मा ने वही घास का तिनका उसके सामने रक्खा —तू इसे उड़ादे। वायु ने सारा बल लगाया मगर असफल रही। अन्त में लज्जित होकर चली आई और यह न बता सकी कि वह यक्ष कौन है। जब देवताओं ने इन्द्र को भेद लेने के लिए भेजा। वह दौड़ कर गया और उसे छू लिया मगर ब्रह्म उसी समय छुप गया। तब इन्द्र आकाश में एक स्वर्ण आभूषणों से सुसज्जित देवी, जिसे उमा कहा जाता है, से मिला। उससे प्रश्न किया कि यह यज्ञ कौन है ? उसने कहा "यह ब्रह्म है। ब्रह्म की विजय से तुमको बड़प्पन मिला है। तब इन्द्र ो ब्रह्म का पता लगा। अग्नि, वायु, इन्द्र, ब्रह्म के जानने के कारण अन्य समस्त देवताओं से बढ़कर हैं मगर इन्द्र ने चूंकि उसे छू लिया था, इसलिये अग्नि और वायु से भी अधिक पूज्यनीय हैं। इस गाथा का नाम ब्रह्म उपनिषद है। अग्नि से अधिक चमकीला, वायु से अधिक तेज और इन्द्र (बिजली) से अधिक दमकीला, यह ब्रह्म है। अग्नि में तेज है वायु में सौन्दर्य है। इन्द्र में तेज और सौन्दर्य दोनों हैं। इसलिये वह दोनों ही शक्तियों के आधीन बीच में रह कर उसे कुछ समझ सकता है अन्यथा यह ब्रह्म इतना ऊँचा है कि वहाँ तक मन बुद्धि की गम नहीं है।

और यह तुम आप हो—तत् त्वम्, असि।

दसवीं बात—तुम कौन हो

तुम ब्रह्म हो। क्या गुरुनानक साहब ने भी ऐसा ही कहा है ? यह प्रश्न तुम कर सकते हो और तुमको प्रश्न करने का अधिकार भी है। जब हम कोई बात कह रहे हैं तो फिर तुम-

हारे प्रश्न को क्यों न सुनेंगे। जो कहेगा वह सुनेंगा भी। यदि हम चुप रहते तो तुम क्यों पूछते। जहाँ कहना वहाँ ही सुनना है। जहाँ कहना नहीं है वहाँ सुनना भी नहीं है। दोनों साथ साथ चलते हैं।

एक ओंकार—यह गुरु की वाणी है। यह उनकी सबसे पहिली वाणी है। बस इसी पर ठहरो। इधर उधर न बहको और हम तुमको केवल चुटकी बजाते हुए क्षणमात्र में समझा देंगे। हमारे यहाँ तर्क वितर्क नहीं है। एक बात कहते हैं और वह एक बात तीर बनकर निशाने पर बैठ जाती है क्यों कि हमने अपनी समझ बूझ की गुत्थी परम पुनीत विभूति (गुरु) के चरणों के नीचे बैठकर सुलझा ली है। वह ऐसी सुलझ गई है कि अब इसमें कोई गाँठ या पेच बाकी नहीं रहा है। जो आप सुलझ चुके हैं वह दूसरों को भी सुलझाते है। जो आप नहीं सुलझे वह दूसरों को भी उलझाते हैं! हमारी सुनो और सुनते चलो और देखो तुम्हारी भी गुत्थी कैसी सुगमता से सुलझ जाती है।

तुमको विश्वास है कि ब्रह्म एक हैं। ओंकार एक है। वह दो तीन चार नहीं है गुरुनानक ने भी यही कहा है। यह उनकी शिक्षा का मूल सिद्धान्त है। इसी पर उड़ो और एक ही क्षण में अभी रहस्य हल हो जाता है।

बृह्म क्या है? ओंकार क्या है! एक समुद्र में कितनी बूंदें हैं एक या दस बीस? देखो। समुद्र को समुद्र की दृष्टि से देखो। सिरे से उस सिरे तक केवल एक ही बूंद दिखाई पड़ती है। प्रत्यक्ष में देखने से एक के सिवाय दो का होना कहीं दिखाई नहीं देता। जब समुद्र एक है और समुद्र एक ही बूंद है फिर दो का मानना भ्रम हुआ या नहीं। एक में एकता है। समुद्र मेंसमु समुद्रपना है समुद्रपना समुद्र का गुण है।

"मनुष्य बनो" (हिन्दी मासिक पत्र) समाचार पत्र (केन्द्रीय)
अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के
अनुसार आपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
२—प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३—मुद्रक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
क—राष्ट्रीयता	:	भारतीय
ख—पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़। उत्तर प्रदेश
४—प्रकाशक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर अलीगढ़
५—सम्पादक का नाम		श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता		भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़
६—स्वत्वाधिकारी	:	श्रीमती सुधा मीतल
संरक्षक	:	परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज

७—मैं सुधा मीतल घोषित करती हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही है।

दिनांक १५ मार्च, , १९८४

सुधा मितल
प्रकाशक के हस्ताक्षर

Regd. No. L-ALG-28

पुस्तकें

हमारे यहां

महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज

कृत

हिन्दी की आध्यात्मिक, धार्मिक, स्त्री उपयोगी, स्वास्थ्य व मनोविज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें तथा 'शाही' और 'मोती' सिलसिले के उपन्यास तथा परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज कृत उच्च कोटि की अमूल्य पुस्तकें मिलती हैं।

पूरा सूचीपत्र मंगायें।

डाक खर्च स... पुस्तकें रजि... ...से भेजी...

मिलने का पता :—

कार्यालय

मनुष्य ...

शिव भवन, ...

अलीगढ़ (उ० प्र०)

ग्राहक सं०